भारत के मंदिरों की अव्यवस्था: धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन?

अवनि बंसल लिखती है कि हालाँकि भारतीय संविधान हर नागरिक को अपने धर्म के चयन व आचरण की स्वतंत्रता प्रदान करता है, मंदिरों में चलते कुप्रबंध उन्हें इस अधिकार से वंचित कर देते है।

ये सभी जानते हैं की भारतीय संविधान का अनुच्छेद 25 धार्मिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है। किन्तु यह जानना भी आवश्यक है कि धार्मिक स्थलों की व्यवस्था को 'अव्यवस्था' में परिवर्तित करने की इनके संचालकों को कितनी आज़ादी है । यह सही है कि अधिकतर उपासक इच्छापूर्वक ही तीर्थयात्राओं की कठिनाइयों का सामना करते हैं, मगर दुर्बल उपासकों के मानवाधिकारों पर गौर करना भी ज़रूरी है।

भारतीय मंदिरों में थके-हारे यात्रियों का तेज़ बारिश और गर्मी में कतारों में खड़े होना एक सामान्य दृश्य है। जितनी अधिक मंदिर की मान्यता उतनी ही दयनीय भक्तों की दशा ।

शायद 'मानवाधिकार' सुनते ही आपकी इस लेख में रुचि डगमगाने लगे। मगर आगे अवश्य पढ़ें । अधिकतर हिन्दू-धर्मी अपने जीवन में तीर्थ-यात्रा करते हैं, विशेषत: वृद्धावस्था में जब ऐसा माना जाता है कि मनुष्य का धर्म के प्रति झुकाव सबसे अधिक होता है। अगर इसी वृद्धावस्था में बुज़ुर्ग यात्रियों से यह अपेक्षा की जाये कि वे घंटों पंक्तियों में खड़े रह अपनी बारी की प्रतीक्षा करें तो इसका तात्पर्य यह है की वास्तविक तौर में उन्हें कोई अधिकार उपलब्ध नहीं है ।

यदि एक 'धार्मिक' हिन्दू उपासना स्थलों पर अपने अधिकारों की मांग करे तो इसे अप्रसन्नता और आश्चर्यपूर्वकता से देखा जायेगा । जिन जगहों का वातावरण प्रार्थना और श्रद्धा के भाव से परिपूर्ण हो, वहाँ यह कहना कि भगवान के दर्शन की व्यवस्था नियमशील तारीके से हो, अकल्पनीय है । फिर भी मानवाधिकारों के

दृष्टिकोण से यह स्थिति अत्यंत चिन्ताजनक है । हाल ही में अनेक-अनेक तीर्थ स्थलों में भगदड़ के कई घटनाओं के बावजूद भी विधायक इनकी बिगड़ती व्यवस्थाओं के प्रति आँखें मूँद बैठे हुए हैं।

इसलिए प्रश्न यह उठता है कि श्रद्धालु किस प्रकार अपने धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग करें, जिसकी गारंटी उन्हें International Covenant on Civil and Political Rights के अनुच्छेद १८ में भी प्रदान की गयी है ? क्या यह उनके अधिकारों का उल्लंघन नहीं है की उन्हें आमतौर से बर्बरतापूर्वक धक्का-मुक्की का सामना करना पड़े? बच्चे, बुजुर्गों और विकलांगो के मानवाधिकारों का क्या? क्या यह कहना अनुचित होगा की धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार में शांतिपूर्वक व आरामदायक उपासना का हक़ भी शामिल है? यदि ऐसा है तो उपासक किसके साथ अपनी शिकायतें दर्ज कर सकते हैं? मंदिरों की नित्दिनीय व्यवस्था ज़रूर एक धार्मिक विषय है लेकिन यह न्यायप्रणाली के दायरे से परे नहीं है। साथ ही साथ मानवाधिकार उल्लंघनों की आलोचना केवल अत्यंत क्रूर और दुखदायी घटनाओं में ही नहीं होनी चहिए। किसी भी व्यक्ति का किसी बड़ी या छोटी पीड़ा को चुप्पी से सहना हमारे समाज के सबके मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने के प्रयास को अंततः विफल करता है।

ऐसा कहने से मेरा यह कहना बिलकुल नहीं है कि हमारे देश के सभी मंदिरों की स्थिति एकसमान है। ना ही मेरा यह कहना है कि केवल हिन्दू-धर्म के धार्मिक स्थलों की देखरेख को दुरुस्त करने की आवश्यकता है । भारत में अधिकतर सभी ऐसी जगहों में बूढ़े और असहाय व्यक्तियों की सहूलियत की सुविधाएं उपस्थित नहीं है।

https://www.youtube.com/watch?v=rgBtaVgIWbE

यह वीडियो मथुरा के सुप्रसिद्ध बांके-बिहारी मंदिर में ली गयी है। किसी भी दिन इस मंदिर में श्रद्धालुओं की कमी नहीं होती जो कि किसी त्यौहार के अवसर पर और बढ़ जाती है। ताकि दूर-दराज़ से आये यात्री भगवान की प्रतिमा के दर्शन प्राप्त कर सकें, मंदिर का मैनेजमेंट बोर्ड एकसाथ सभी दरवाज़े खोल देता है जिससे कि हर दिशा से लोग मंदिर मंदिर में भागे चले आते हैं। क्योंकि मंदिर प्रतिदिन सीमित समय के लिए ही खुलता है इस कारण अधिक से अधिक यात्री कुछ ही घंटों के अंतर्गत दर्शन के लिए उपस्थित रहते हैं।

यह संभव है कि भक्त शारीरिक कष्टों के होते हुए भी अपने आप को पूजा-पाठ में विलीन करने के प्रयास को सुखदायी अनुभव मानते हो। लेकिन धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार हर नागरिक को बिना किसी भेदभाव के प्राप्त है न केवल उन व्यक्तियों को जो शारीरिक तौर पर कठिनाईयां सहने के सक्षम हो। मंदिरों में इन प्रतिकूल परिस्थितियों में बुजुर्गों और बच्चों का पूजा-अर्चना करना कितना तकलीफदेह हो सकता है यह जानने के लिए अधिक सूझ-बूझ की ज़रुरत नहीं है।

भारत में मंदिरों की व्यवस्था एक विस्तृत विषय है जिसका यह एक उदहारण-मात्र है । श्रद्धालुओं को व्यवस्थित प्रकार से दर्शन करवाने की योजना बनाना एवं यह सुनिश्चित करना कि लोग अनुशासनपूर्वक पंक्तियों में खड़े हो, अत्याधिक जटिलता का कार्य नहीं है। किन्तु जिस देश में धर्म एक अत्यंत संवेदनशील और गंभीर मुद्दा हो, वहाँ ऐसे सरल सुझावों को लागू करना तो दूर, उन्हें प्रस्तावित करना भी विवाद खड़े कर सकता है। मंदिरों की संचालक समितियों में सुधार के लिए यह ज़रूरी नही कि उनके बनावटी ढांचे का रूपांतर किया जाए। आखिरकार इन मुद्दों पर चर्चा होने लगी है और यही अपने आप में एक आशा की किरण है।

प्रकाशित:January 17, 2013